उदभावना

जन भावनाओं का साझा मंच

अंक : 150-151

मूल्य : 50 रुपये

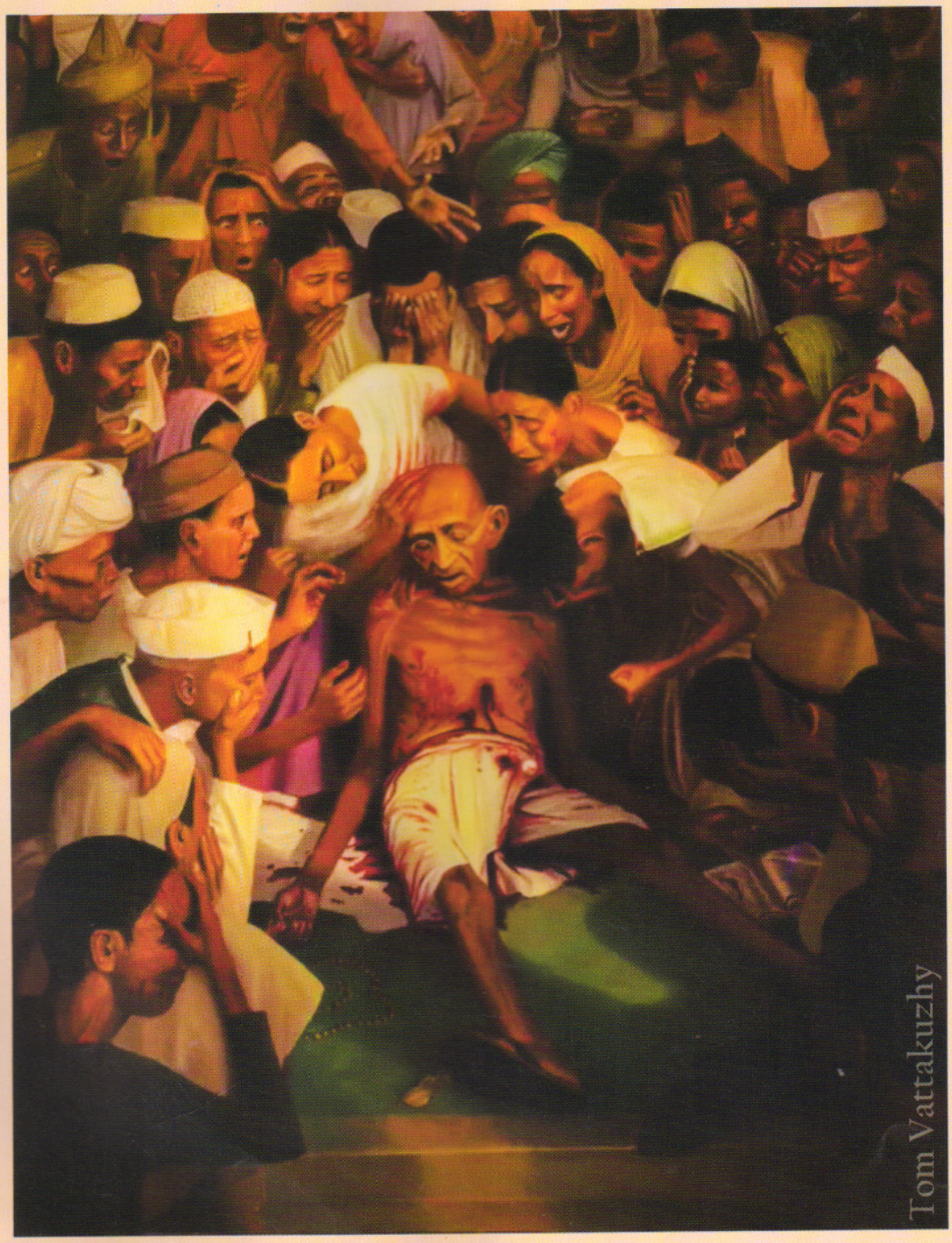

सत्ता के खिलाफ व्यक्ति का संघर्ष दरअसल
भूलने के खिलाफ याद्दाश्त का संघर्ष है
– मिलान कुंदेरा

उद्भावना

वर्ष : 38 अंक : 150-151

जनवरी - जून 2023

मई, 2023 में प्रकाशित

सलाहकार मंडल

डॉ. राजकुमार शर्मा,
राजेश जोशी, रामप्रकाश त्रिपाठी

संपादक मंडल

अजेय कुमार (संपादक)
हरियश राय (उप संपादक)
मुशर्रफ अली
विनीत तिवारी

सहयोग

रामपाल कटवालया

संपादकीय पता

एच-55, सेक्टर 23, राजनगर, गाजियाबाद

पत्राचार का पता

ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रिअल एरिया,
जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095

मो. 9811582902
E-mail : pd.press@gmail.com

आवरण पेंटिंग : Tom Vattakuzhy

आवरण : राजकुमार

सहयोग राशि

यह अंक	:	50 रु.
वार्षिक	:	300 रु.
संस्थानों से वार्षिक	:	500 रु.
आजीवन (व्यक्ति)	:	3000 रु.
आजीवन (संस्थानों के लिए)	:	5000 रु.

सभी मनीआर्डर/चैक/ड्राफ्ट **'उद्भावना'** के नाम से पत्राचार के पते पर ही भेजें. जो पाठक हमारे अकाउंट में सीधे जमा करना चाहते हैं, वे कृपया निम्न सूचना देखें

अकाउंट	: UDBHAVANA
अकाउंट न.	: 90261010002100
बैंक	: Canara Bank
ब्रांच	: राजेंद्र नगर, नई दिल्ली-110060
IFSC	: CNRB0019026

आजीवन सदस्यों को अब तक छपे सभी उपलब्ध महत्त्वपूर्ण विशेषांक भेंट स्वरूप दिए जाएंगे

पत्रिका में छपे विचार लेखकों/लेखिकाओं के अपने हैं, उनसे संपादकीय सहमति होना अनिवार्य नहीं है।

गांधी-गोडसे : एक युद्ध

अशोक कुमार पाण्डेय-10/**जवरीमल्ल पारख**-15,/**अजय ब्रह्मात्मज**-24/ **संजय कुंदन**-26 / **सूरज पालीवाल**-29 / **धनंजय कुमार** -30 / **नागेन्द्र**-32 / **वीरेन्द्र यादव**-33 / **मुशर्रफ अली**-34 / **रामदुलारी शर्मा**-38 / **राम पुनियानी**-44

स्मृति आलेख

सुरेश सलिल : हिन्दी भाषा का अंतिम मसिजीवी — **कृष्ण कल्पित** 2

अपनी बात

गांधी, असग़र वजाहत और हम — **अजेय कुमार** 6

कहानी

जाति-सभा — **संजय कुमार सिंह** 46

सपने और सिपाही — **हरभगवान चावला** 91

कविताएँ व ग़ज़ल

चंद्रेश-51 / अंचित-52 / भानु प्रकाश रघुवंशी-53 / नचिकेता-84 / सरवर हसन खान-90

विश्व

क्या सचमुच चीन के रंग में रंगती जा रही है दुनिया? 55

तो अमेरिका ने हार मान ली है — **सत्येंद्र रंजन** 58

वक्तव्य

स्कूली पाठ्यपुस्तकों में एनसीईआरटी के हालिया बदलाव 61

साक्षात्कार

भाजपा मीडिया सेल के पूर्व सदस्य शिवम शंकर सिंह 63

बहस के लिए

एजाज़ अहमद की पीड़ा, ग्राम्शी और वाम — **मुशर्रफ़ अली** 68

आलेख

दलित लेखन के अन्तर्विरोधों से जुड़े कुछ अहम् सवाल — **रामकली सराफ** 77

स्वर कोकिला लता मंगेशकर के सामाजिक और राजनैतिक सरोकार — **प्रमोद रंजन** 85

खेल

महिला क्रिकेट टीम का आईसीसी ट्रॉफी का सपना फिर टूटा 93

टेनिस को नई ऊंचाइयाँ देने वाली सानिया — **मनोज चतुर्वेदी** 94

पुस्तक समीक्षा

मनुष्य होने के संस्मरण- **प्रियदर्शन** -96 / उपशीर्षक-**एकान्त श्रीवास्तव**-99 / रूई लपेटी आग-**हरियश राय** -102 / भारत की घड़ी -**संजय कुंदन**- 105 /चांद गवाह-**महेश दर्पण**-108 / सोने में फाँस की तरह-**डॉ. रमाकांत शर्मा**-111 /बोल काश्तकार-**पल्लव**-112 / एंटीने पर बैठी सोन चिड़ी-**महेन्द्र नेह**-114

विज्ञान

गौमूत्र में 14 तरह के हानिकारक बैक्टीरिया होते हैं- एक अध्ययन 115

रपट

नन्द चतुर्वेदी स्मृति व्याख्यान-116 /जलेस आयोजन की रपट-117/देश-विभाजन पर महत्वपूर्ण व्याख्यान-118/वैखरी विचार उत्सव-119/पॉल रॉबसन-समुद्र, आकाश और मिट्टी की आवाज़-121/तीन पुस्तकों पर विचार गोष्ठी-123 / कवि राकेशरेणु के काव्य संग्रह पर गोष्ठी-124/जन लेखक संघ की गतिविधियां-126

फिल्म समीक्षा

दुष्प्रचार का हथियार बनी फिल्म 'द केरेला स्टोरी' 127

स्मृति-आलेख

सुरेश सलिल : हिन्दी भाषा का अंतिम मसिजीवी

❐ कृष्ण कल्पित

कवि, अनुवादक, लेखक, संपादक, विचारक सुरेश सलिल का जाना हिन्दी भाषा के अंतिम मसिजीवी का जाना है। गुजरे नवंबर महीने में पत्नी की मृत्यु के बाद वो काफी अकेले हो गए थे। सादतपुर के अपने 46 साल पुराने मकान में ताला लगाकर उन्हें राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में अपने बेटे के यहाँ शिफ्ट होना पड़ा। लेकिन मृत्यु के ऐन पहले परिस्थितियाँ उन्हें फिर वहीं खींच ले गईं। लंबी अस्वस्थता के बाद पिछली 22 फरवरी को वहीं उन्होंने बेटे–बेटियों और पड़ोस में रहने वाले अपने छोटे भाई के परिवार वालों की उपस्थिति में अंतिम साँस ली। लगभग अंतिम समय तक वो लिखने–पढ़ने के काम में जुटे रहे।

सुरेश सलिल का जन्म 19 जून 1942 को उत्तरप्रदेश के उन्नाव जिले के गंगादासपुर गांव में हुआ था। वहाँ से शुरुआती पढ़ाई करने के बाद नौजवानी की शुरुआत में वो उन्नाव से लगे शहर कानपुर चले आए। कानपुर जो कभी स्वतंत्रता सेनानियों का शहर हुआ करता था उस वक्त ट्रेड यूनियनों और नवगीतकारों का शहर था। करेंट बुक डिपो के रूप में कम्युनिस्ट विचार–धारा की पुस्तकों का एक केंद्र भी वहाँ हुआ करता था। पढ़ने–लिखने का शौक उन्हें शुरू से ही था। कॉलेज की संभवतः अधूरी पढ़ाई के बाद वे वहीं के यूनिवर्सल बुक डिपो में नौकरी करने लगे, जो प्रकाशन जगत का जाना–माना नाम रहा है। सलिलजी का कहना था कि उनकी दुकान में उन्होंने जितनी किताबें बेचीं उससे ज्यादा पढ़ डालीं। साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र की किताबें सुरेश सलिल चाव से पढ़ते थे। पढ़ते–पढ़ते और स्वाध्याय से उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी और बांग्ला भाषाओं पर अधिकार हो गया। यह अध्ययन जीवन भर उनके काम आया ।

जीवनयापन की तलाश में भले ही 1969 में वो दिल्ली आ गए थे लेकिन कानपुर अंत समय तक उनकी शख्सियत में बचा रहा। उनकी बौद्धिकता की नींव कानपुर में ही रखी गई थी। भाषा की समझ और वैश्विक चेतना के बीज उनमें कानपुर में ही प्रस्फुटित हुए, लेकिन मार्क्सवादी विचारों का पल्लवन दिल्ली में हुआ। इसके कुछ बरसों के भीतर ही दिल्ली में गोरखपुर से आनंदस्वरूप वर्मा, अल्मोड़ा से त्रिनेत्र जोशी और गढ़वाल से मंगलेश डबराल भी दिल्ली आए। दुनिया बदल रही थी। देश भी करवट ले रहा था। प्रिविपर्स खत्म होने वाला था, बैंकों का राष्ट्रीयकरण होने वाला था और पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश बनने वाला था।

सुरेश सलिल और उनके दिल्ली के मार्क्सवादी मित्रों में अंतर यह था कि सुरेश सलिल मार्क्सवाद के साथ–साथ भारतीय ज्ञान परम्पराओं में भी गहरी रुचि रखते थे। यह इसलिए अहम है कि उस दौर में मार्क्सवादी लोग बहुधा भारतीय ज्ञान परम्परा को हिकारत की निगाह से देखा करते थे। इसी तरह

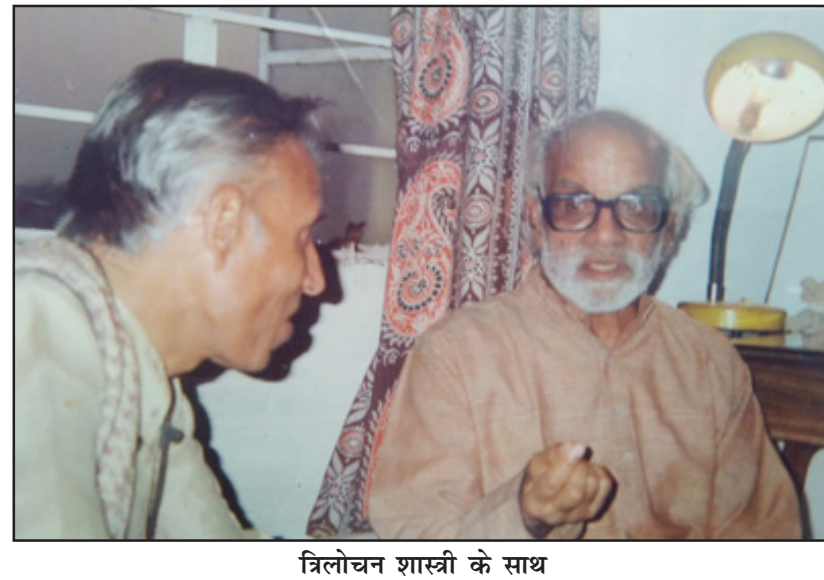

त्रिलोचन शास्त्री के साथ

नागार्जुन और चित्रकार करुणानिधान के साथ

नई और समकालीन कविता के साथ–साथ उनका हमारे पारंपरिक काव्य रूपों से भी लगाव बना रहा। वे अंत समय तक ग़ज़लें लिखते रहे। अभी कुछ बरस पहले ही उन्होंने 800 साल की ग़ज़ल परंपरा का एक प्रतिनिधि चयन 'कारवाने गज़ल' नाम से राजपाल एंड संज़ के लिए संपादित किया था, जो खासा चर्चित हुआ।

सुरेश सलिल हिन्दी की समकालीन कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं। भले ही उन्हें अपने अन्य समकालीनों की तरह इसका पूरा दाय न मिल पाया हो। उन्होंने गीत में भी हाथ आजमाया और शायरी में भी। उनके महत्वपूर्ण कविता संकलन 'खुले में खड़े होकर', 'मेरा ठिकाना क्या पूछो हो', 'करोड़ों किरनों की जिंदगी का नाटक सा' 'भीगी हुई दीवार पर रोशनी' 'रंगतें और यह' और 'कोई दीवार भी नहीं' इत्यादि हैं। उन्होंने एक बड़ा काम विश्व कविता को हिन्दी में लाने का किया। वे कविता के महत्वपूर्ण अनुवादक थे। लोर्का, नाजिम हिकमत, पाब्लो नेरुदा, ताकुबुकू, एंव जेस्तर इत्यादि दर्जनों कवियों की कविताओं का 'तनाव' शृंखला के लिए अनुवाद किया। इस सिलसिले में 'रोशनी की खिड़कियाँ' उनकी एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। यह बीसवीं सदी के 31 भाषाओं के 118 कवियों की अनूदित कविताओं का एक बृहद संकलन है। 'जीवन और साहित्य' और 'पढ़ते हुए' उनकी आलोचना की कृतियां हैं। साथ ही उनके द्वारा अनूदित करीब दर्जन भर विश्व भाषाओं की अलग–अलग कहानियों का एक संकलन भी पिछले साल 'अपनी जुबान में'शीर्षक से संभावना प्रकाशन ने छापा था।

मेरी सुरेश सलिल से पहली मुलाकात 1986 में दिल्ली में हुई थी जब मैं आकाशवाणी की नौकरी छोड़कर दिल्ली पहुंचा था। जनसत्ता के कार्यालय में मंगलेश डबराल के केबिन में वो भेंट हुई थी जहां वे लगभग रोज ही आते थे। सुरेश सलिल पुराने फ्रीलांसर थे और मैं नया फ्रीलांसर। सरल व्यक्तित्व था उनका। कंधे पर हर समय झोला लटकता रहता जिसमें किताबें, कतरनें, संदर्भ सामग्री और उनके लिखे हुए लेख रहते थे। पहली ही मुलाकात में मेरी सलिलजी से मित्रता हो गई जो अभी तक बदस्तूर थी।

सुरेश सलिल, त्रिनेत्र जोशी, ब्रजेश्वर मदान और मैं। चारों फ्रीलांसर। त्रिनेत्र जोशी चीन से आए ही आए थे। उन दिनों हिन्दी पत्रकारिता में जनसत्ता और नवभारत टाइम्स की प्रतिद्वंद्विता थी। दिनमान बंद हो गया था या होने वाला था। हम दोनों अखबारों के लिए लिखते थे। साहित्य पर, सिनेमा पर, नाटक पर। एक बार तो अजीब बात ये हुई कि राजकपूर की मृत्यु के अगले दिन मैं, सलिलजी, ब्रजेश्वर मदान और मनमोहन तल्ख अपने–अपने स्मृति लेख लेकर मंगलेश डबराल के पास पहुंच गए। क्या किया जाए? फिर मंगलेश डबराल ने रविवारी जनसत्ता में वे चारों श्रद्धांजलि लेख प्रकाशित किए।

जब मैं दिल्ली पहुंचा तब सुरेश सलिल 'युवकधारा' पत्रिका का संपादन करते थे। युवकधारा में मैंने कई आवरण कथाएं लिखीं। इस पत्रिका के मालिक कांग्रेस के राजनेता तारिक अनवर थे। सलिल जी बहुत अच्छा पारिश्रमिक दिलवाया करते थे। खुद फ्रीलांसर थे, लेकिन दूसरे मसिजीवियों का खयाल रखने की गहरी मानवीयता थी उनमें, जो उस जमाने के दिल्ली के कई पाखंडी हिंदी लेखकों के बीच दुर्लभ थी। सुरेश सलिल कवि थे, लेखक थे, पत्रकार–संपादक थे, अनुवादक थे। वे काम में यकीन रखते थे। सच्चे अर्थों में सुरेश सलिल कलम के मजदूर थे। सामूहिकता और परस्परता में उनका भरोसा था। उन्होंने अपने दूसरे मित्रों की तरह नायक बनने की कभी कोशिश नहीं की। वे इस मायने में दुर्लभ थे कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, 1857 की क्रांति, गणेश शंकर विद्यार्थी, उर्दू शायरी, रीतिकालीन कविता आदि विविध विषयों के जबरदस्त अध्येता थे। गणेश शंकर विद्यार्थी के समग्र लेखन का उन्होंने चार खंडों में

संपादन किया।

सुरेश सलिल जब कानपुर से दिल्ली आए तो शुरू में उन्होंने दिल्ली प्रेस, राजपाल एंड संस, पुस्तक महल इत्यादि प्रकाशन गृहों में काम किया। बाद में मुक्ति प्रकाशन नाम से स्वयं का भी एक प्रकाशन शुरू किया। इस प्रकाशन से केवल एक किताब छपी– 'धरती की सतह पर', जो कि अदम गोंडवी का पहला ग़ज़ल संग्रह था। सुरेश सलिल जैसा मुक्त लेखक कोई उद्यम चलाएगा यह विचित्र बात थी। नतीजा वही हुआ–प्रकाशन बंद हो गया।

सुरेश सलिल का पूरा जीवन एक लेखक की संघर्ष–कथा है। वे हर समय किसी धुन में खोए रहते। दिल्ली उनकी वैचारिक भूमि बनी। साम्यवाद की पाठशाला। इस दरम्यान आपातकाल के खतरनाक दिन भी आए जब उन्हें अपनी तमाम मार्क्सवादी किताबें कभी विष्णु खरे से खरीदे सोफे की स्प्रिंगों के बीच छिपा कर रखनी पड़ीं। जनसंघर्षों में, आंदोलनों में, विरोध प्रदर्शनों में उनकी उपस्थिति अनिवार्य थी। वे अंत समय तक अपने विचारों पर अडिग रहे। अडिग तो रहे पर चिंताओं से घिरे हुए भी रहे। यह खुद से ज्यादा देश–दुनिया में पूंजीवाद–फासीवाद के चल रहे नंगे नाच से पैदा हुई चिंता थी।

केदारनाथ सिंह, नामवर सिंह के साथ

दिल्ली आने के तीन–चार साल बाद वो क्षय रोग की चपेट में आ गए थे। बीमारी से मुठभेड़ के बीच मकान के किराए का बंदोबस्त भी करना होता था। ऐसे में दिल्ली की सीमा पर लगी बस्ती सादतपुर में उन्होंने 1976 में एक मकान बनाया, जहाँ तब कथाकार रमाकांत, डॉक्टर माहेश्वर, कवि– जीवनीकार विष्णुचंद्र शर्मा पहले से रहते थे। फिर रामकुमार कृषक, धीरेंद्र अस्थाना, हरिपाल त्यागी, करुणानिधान, रूपसिंह चंदेल, महेश दर्पण आदि और भी लेखक–कलाकार थोड़े या अधिक समय वहाँ रहने के लिए आए। बाद में बाबा नागार्जुन भी सादतपुर के निवासी बने। फिर धीरे–धीरे सब साथ छोड़ते गए। पिछले वर्षों में हरिपाल त्यागी और विष्णुचंद्र शर्मा के दुनिया से चले जाने के बाद वो इस बस्ती के सबसे वरिष्ठ सदस्य थे।

राजेन्द्र यादव, ज्ञानरंजन, हरिपाल त्यागी व पंकज बिष्ट के बीच रचना-पाठ

सुरेश सलिल को पुरानी चीजों से बहुत प्रेम था। इतिहास से, पुरानी फिल्मों से, खंडहरों से, पुरानी किताबों से। उनकी त्रासदी यही थी कि वे एक नई दुनिया में पुराने नागरिक की तरह रहते रहे। अपनी बहुत सी किताबें उन्होंने कुछ लाइब्रेरियों को दे दी थीं। पर जितना मुझे मालूम है अभी भी काफी पुरानी और दुर्लभ किताबें बची हैं। कोई न कोई इन्हें भी ले जाएगा, पर क्या उसमें वो शिद्दत होगी जो सुरेश सलिल में थी।

सुरेश सलिल अंत समय तक कई व्याधियों से घिर गए थे। उन्हें सुनाई भी बहुत कम देता था। बावजूद इसके हर सप्ताह उनका टेलीफोन आ जाता था और वे दीन–दुनिया की खबर लेते रहते थे। अभी सादतपुर के एक मित्र ने लिखा कि एक बार सुरेश सलिल किसी हलवाई की दुकान पर जाकर दांत दर्द की दवा मांगने लगे थे। सुनाई ही नहीं अंतिम दिनों में उनको सुझाई भी कम देने लगा था। 'पुस्तक पगी आंखें' मुहावरा